International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 473-474

श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग की वर्तमान में प्रासंगिकता

मनीष कुमार त्रिपाठी

शोधच्छात्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गङगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

संसार में मानवेतर प्राणियों की आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित हैं। भूख, प्यास, स्वजाति रक्षा के लिए यौनेच्छा तथा यथा सम्भव जीवन–रक्षा ही प्रमुख आवश्यकताएँ हैं परन्तु मनुष्य ने भोगों के प्रति उद्दाम लालसा के कारण अपनी आवश्यकताएँ भी अनन्त कर ली हैं। सुखमय जीवन की अदम्य कामना के कारण तदभाव जन्य दुःख भी उसका पीछा नहीं छोड़ते फलतः शाश्वत–शान्ति की मृगतृष्णा उसे आजीवन भटकाती रहती है। भारतीय संस्कृति में एतदर्थ चतुर्वर्ग– अर्थ, धर्म काम एवं मोक्ष की परिकल्पना की गई। परिणाम स्वरूप विभिन्न ऋषियों ने भिन्न–भिन्न दार्शनिक एवं धार्मिक मार्गों का सृजन करके कल्याण का पथ प्रशस्त तो किया परन्तु विवेक के अभाव में मानव दिग्भ्रमित ही रह गया। अन्त में अनेक धर्मग्रन्थों के प्रणेता व्यास को स्वयं 'यक्ष–प्रश्न' के सन्दर्भ में लिखना पड़ा–

> वेदा विभिन्नाः स्मृतियोर्विभिन्नाः
> नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
> धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां
> महाजनो येन गतः स पन्थः।।

तैत्तिरीय उपनिषद् में भी कहा गया–

> अथ यदि ते कर्म–विचिकित्सा वा
> वृत्तविचिकित्सा वा स्सात् ये तत्र ब्रह्मणाः स्युः।
> यथा ते तत्र वर्तेन् तथा तत्र वर्तेथाः।(एकादश अनुवाक)

धर्म–अधर्म, कार्य–अकार्य, शुभ–अशुभ आदि संसारिक द्वन्दों के इसी विप्रतिषेध का समाधान श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है। यदि हम ग्रन्थ का उपक्रम देखें तो अर्जुन भी इन्हीं द्वन्दों के कारण मोह–ग्रस्त हो गया। उसके सामने एक ओर अहिंसा–वैराग्य जैसे शुभ कर्म थे तो दूसरी ओर गुरूजनों एवं वंश–विनाश का जघन्य पाप था। वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य के द्वन्दों में पड़कर किंकर्तव्यविमढ़ हो गया। भगवान कृष्ण ने उसका कर्त्तव्य–बोध जागृत कराया तथा आतताइयों के वध हेतु सज्जित किया। यद्यपि गीता में ज्ञान, योग तथा भक्ति तीनों निष्ठाओं की व्याख्या की गई है पर भगवान का मुख्य उद्देश्य तो अर्जुन को युद्धकर्म में प्रवृत्त कराना था। ज्ञान द्वारा वैराग्य एवं संन्यास नहीं, और न तो भक्त बनाकर भजन कराना ही उनका लक्ष्य था। त्रिविध निष्ठाओं की व्याख्या 'अर्थवाद' के अन्तर्गत आती है। बाल गंगाधर तिलक ने भी 'गीता रहस्य' में कर्म को ही ग्रन्थ का प्रतिपाद्य माना है।

गीता का 'कर्म–योग' महर्षि पतंजलि के योग से भिन्न है। यहाँ किसी साधन पाद अथवा कैवल्य पाद की आवश्यकता नहीं है अपितु एक ऐसा मन तैयार करना है जो सुख–दुःख, जय पराजय, लाभ–हानि, निन्दा–स्तुति तथा शीतोष्ण आदि सांसारिक द्वन्दों से मुक्त होकर कर्म अवश्य करे पर उसमें फल की कामना न हो–

> नियतं कुरू कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।(गीता 3–8)

गीता का प्रमुख प्रतिपाद्य ही 'कर्म–योग' है। भगवान् अर्जुन से कहते हैं–

> कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
> मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।(गीता 2–46)

कर्मफल में अनासक्ति के साथ समस्त द्वन्द्वों में समत्व बृद्धि का भी उपदेश किया गया है–

> योगस्थः कुरू कर्माणि संङ्त्यक्त्वा धनंजय।
> सिद्धयसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्चते।।(गीता 2–48)

गीता में इस कर्मयोग की दो परिभाषाएँ प्राप्त होती हैं– 'समत्वं योग उच्चते' तथा 'योगः कर्मसु कौशलम्'।

गीता के पंचम अध्याय में 'कर्म संन्यास' तथा 'कर्म–योग' के सम्बन्ध में अर्जुन द्वारा प्रश्न किए जाने पर भी भगवान 'कर्म योग' को ही श्रेयस्कर बताते हैं–

> संन्यासः कर्मयोश्च निः श्रेयसकरावुभौ।
> तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।।(गीता 5–2)

इसी विशिष्टता के कारण ही 'कर्म योग' द्वारा 'ब्रह्मत्व' की प्राप्ति भी शीघ्र हो जाती है–

> योग–युक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति।(गीता 5–6)

गीता की शिक्षा मानव को कर्तव्योन्मुख करती है। कर्म केवल कर्तव्य भावना को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए फल की आकांक्षा का पूर्णतया त्याग देना चाहिए। डा0 राधा कृष्णन ने भी 'कर्मयोग' को ही गीता का मौलिक उपदेश माना है–

The whole setting of Gita points out that is is an exhortation to action. (Indian Philosophy Vol. 1, P.564)

सकाम कर्म मनुष्य को बन्धन की ओर ले जाते हैं तथा अतृप्त् कामनाएँ ही 'पुनर्जन्म' का कारण प्रदान करती हैं जो 'मुक्ति' की आधार–भूमि हैं। 'जीवन्मुक्त' व्यक्ति का ही अनुकरण लोक करता है–

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।(गीता– 2–21)

स्वयं भगवान भी कर्म का परित्याग नहीं करते–

> न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
> नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।(गीता 3–22)

भारतीय चिन्तन 'मोक्ष' को परम पुरूषार्थ मानता है। जिसका अन्तिम एवं एक मात्र साधन मन में विषयों की इच्छा का अभाव है। 'मनः एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' यह श्रुति वाक्य इसी ओर निर्दिष्ट करता है। परन्तु मन में नैसर्गिक चंचलता व्याप्त रहती है 'जीवात्मा' मन तथा ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से विषयों का भोग करता है–

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठिाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।(गीता 15–9)

यही अदम्य कामना जीवात्मा को बारंबार बन्धन में बाँधती रहती है। कठोपनिषद् में यम ने नचिकेता को इन्हीं भोगों के जाल में बांधना चाहा था परन्तु वह इन्हें 'श्वोभावाः' समझकर कह देता है–

'तवैव वाहाः तव नृत्यगीते।' (कठो. 1–1–26)

ज्ञान निष्ठा में ज्ञान द्वारा मन की विषयों से विरति हो जाती है। 'भक्ति' में आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा तथा योग में अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा मन की चंचलता स्थिरता में परिणत हो जाती है। मन की इसी एकनिष्ठता की प्राप्ति हेतु अनेक बाह्य साधनों की परिकल्पना की गई है पर मनुष्य मूल से हट कर उन्हीं बाह्य साधनों को साध्य मान बैठता है तथा जीवन पर्यन्त नाना योनियों में भटकता है।

भगवद्गीता की तरह कर्तव्य को कर्तव्य के लिए (Duty for the sake of Duty) कह कर पाश्चात्य दार्शनिक 'कान्ट' ने भी निष्काम कर्म का ही समर्थन किया है। हमें कर्म इस लिए नहीं करना चाहिए कि उसका क्या शुभ अथवा अशुभम फल प्राप्त होगा अपितु कर्तव्य बोध तथा लोक हित समझ कर करना चाहिए। 'कान्ट' ने इन्द्रियों का दमन करने के लिए कहा है पर गीता बलात् इन्द्रियों का दमन करके मन से विषयों का ध्यान करने वाले को ढोंगी कह कर निन्दा करती हैं–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।(गीता 3–6)

इसके विपरीत युक्ताहारविहार का समर्थन गीता में इस प्रकार किया गया है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।(गीता 6–17)

भगवद्गीता में ज्ञान कर्म एवं भक्ति का सुन्दर समन्वय है। ईश्वर की प्राप्ति में तीनों सहायक हैं। तीनों साधन हैं समत्व बुद्धि के, मन की स्थिरता के तथा कबीर के अनुसार 'बेपरवाही; के भी–

चाह गई चिन्ता गई मनुआ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए ते शाहन के शाह।।(कबीर)

परमात्मा सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप है। ज्ञानमार्गी के लिए वह 'शाश्वत आनन्द' दिव्य प्रकाश तथा कैवल्य है। कर्मयोगी के लिए वही 'शुभ' है भक्त को वही साजुज्य मुक्ति अथवा 'जन्म–जन्म पद राम रति' की सम्प्राप्ति है। यद्यपि सभी निष्ठाओं में 'कृपासाध्यता' का भी उल्लेख मिलता है। जैसे–
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।
(कठ–1–2–23 एवं मुंडक 3–2–3)

तीनों निष्ठाओं में अभेद होने पर भी निष्काम कर्मयोग अधिक व्यावहारिक है जिसके कारण अर्जुन युद्ध जैसे घोर कर्म में प्रवृत्त होकर भी निःश्रेयस की प्राप्ति कर सका।

कालान्तर में बौद्धों का 'मध्यम मार्ग' भी इसी 'समत्व की देन' सिद्ध हुआ। यही 'कर्मयोगी' जीवन जीने की कला (Art of Living) के रूप में भी विश्व में विश्रुत है।

वर्तमान समय में हमारे देश में सर्वाधिक क्षरण नैतिकता का हो रहा है। भोगवाद की अन्धी दौड़ में सामान्य जन से उच्च पदस्थ तक समाज में भ्रष्टाचार में डूबकर कर्तव्य बोध से विमुख हो जाता रहा है। नैतिकता के अभाव में आर्थिक सामाजिक एवं यौन अपराधों की अभिवृद्धि शासन को भी पंगु बनाती जा रही है। छात्रों में कर्तव्य–बोध की कमी से उच्छृंखता, कर्मचारियों में अकर्मण्यता प्रशासकों में घोटालों का उत्प्लवन दिखाई देने लगा है। इन सब के परिणाम स्वरूप मानसिक अवसाद, कुण्ठा तथा आत्म हत्या की प्रवृत्ति पनपती जा रही है। ऐसे समय में भगवद्गीता का 'कर्मयोग' जन–जन में कर्तव्य–बोध का सृजन करेगा। 'ज्ञान योग' मन एवं बुद्धि का मालिन्य मिटा कर सत्व गुण की ओर उन्मुख करेगा तथा 'भक्ति योग' मन में करूणा तथा संवेदना का संचार करके मानवता के प्रति रीति का प्रादुर्भाव कर सकता है। भगवद्गीता मानवता की रक्षा के लिए अभेद्य कवच तथा तमो गुण के विनाश हेतु निरन्तर जाजल्यमान प्रकाश स्तम्भ है जिसका प्रणयन करक महर्षि व्यास ने समस्त मानवजाति को चिर ऋणी बना दिया है। मानवता के लिए गीता भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों में प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सारणी

1. श्रीमद्भगवद्गीता : टीका स्वामी रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर
2. गीता रहस्य : बाल गंगाधर तिलक
3. भारतीय दर्शन की रूपरेखा : प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा
4. ईशा नौ उपनिषद् : गीता प्रेस गोरखपुर
5. भगवद्गीता : शांकर भाष्य गीता प्रेस गोरखपुर
6. Indian Philosophy: Dr. Radha Krishna